

स्वातंत्र्योत्तर जन आंदोलन और हिंदी कविता

डॉ अर्चना त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ भीमराव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

Article Info

Volume 5, Issue 1

Page Number : 105-110

Publication Issue :

January-February-2022

Article History

Accepted : 01 Feb 2022

Published : 10 Feb 2022

सारांश- किसान आंदोलन की ऐतिहासिक एवं वैचारिक पड़ताल की आज सख्त जरूरत है। आज के समाज में हो रहे सामाजिक, नव सामाजिक आंदोलनों पर लेखकों को एक बार फिर से उसी तेवर के साथ लिखने और जनता के सामने लाने की जरूरत है। आज जरूरत है एक बार फिर से जन में शामिल होकर जनता का आदमी बनने की क्योंकि दुनिया रोज बनती है और समय का पहिया चलता रहता है और आंदोलनों से निकले लहू से क्रांति गीत बनता है।

मुख्य शब्द- स्वातंत्र्योत्तर, जन, आंदोलन, हिंदी, कविता, ऐतिहासिक।

हर देश काल में सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक विषमताओं के कारण स्थापित सत्ता के विरुद्ध विद्रोह हुए हैं। अन्याय के खिलाफ तरह-तरह तरीकों से प्रतिरोध व संघर्ष होते रहने का अपना इतिहास रहा है। स्थापित सत्तातंत्र में परिवर्तन लाने के लिए जनता द्वारा किए गए संघर्षों को जनसंघर्ष की संज्ञा दी जाती है। हर संघर्ष की अपनी एक राजनीतिक समझदारी होती है, जिससे प्रेरित होकर जनांदोलन शुरू होता है।

जनांदोलन विषम परिस्थितियों की कारक व्यवस्था को बदलने के लिए की गई दीर्घकालिक सांस्कृतिक, राजनीतिक व सामाजिक प्रक्रिया है। किसी आंदोलन को कई जन संघर्षों से होकर गुजरना पड़ता है या पड़ सकता है।

सवाल यह है कि दमन और संघर्ष के विविध रूपों सफलताओं-असफलताओं, हताशाओं को उस समय का साहित्य दर्ज करता है कि नहीं?

स्वतंत्रता की 25वीं वर्षगांठ के अवसर पर 'इंडियन लिटरेचर सिंस इंडिपेंडेंस' शीर्षक से भारत की विभिन्न भाषाओं में साहित्यिक प्रगति का एक सर्वेक्षण साहित्य अकादमी ने अंग्रेजी में प्रकाशित कराया जिसके लिए हिंदी का सर्वेक्षण किया नामवर सिंह ने, 1973 में लिखे इस लेख में नामवर सिंह ने आजादी के बाद के डेढ़ दशक के साहित्य के विषय में लिखा- 'ऐसा प्रतीत होता है कि इस दौर के साहित्यकारों को राष्ट्र नेता जवाहर लाल नेहरू द्वारा दिए गए समाजवाद के आश्वासन में काफी आस्था थी और वे राष्ट्र निर्माण के प्रति आशावान थे।'¹

नामवर सिंह ने आजादी के बाद के 1950 के दशक को हिंदी साहित्य की दृष्टि से नव-रोमांटिक उत्थान का दौर कहा जबकि 60 के दशक को उन्होंने मोहभंग का दौर बताया। नामवर सिंह ने लिखा " राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के पहले के दौर के समान इस नए दौर में भी आरंभिक तीन-चार वर्षों के संक्रांति-काल के बाद में देश में एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर आई जिसका प्रभाव साहित्य में एक प्रकार के नव-रोमांटिक उत्थान के रूप में प्रकट हुआ"²।

मैनेजर पांडेय ने आलोचना के जनवरी, मार्च 1979 अंक में 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएँ' शीर्षक लेख में नामवर सिंह द्वारा प्रस्तावित अवधारणा कि 'आजादी के शुरूआती तीन-चार वर्षों के बाद देश में

सांस्कृतिक नवजागरण की लहर आई' का खंडन करते हुए लिखते हैं कि 'विचारणीय यह है कि इस तथाकथित सांस्कृतिक नवजागरण की पृष्ठभूमि क्या है? इस कालखंड में देश का बँटवारा हुआ अभूतपूर्व सांप्रदायिक दंगों के भीषण हत्याकांड में देश डूब गया, गाँधी की हत्या हुई, प्रगतिशील आंदोलन से जुड़े कलाकारों, साहित्यकारों, पत्रकारों, रंगकर्मियों, पत्र-पत्रिकाओं आदि का कठोर दमन किया गया। तेलंगाना के हजारों क्रांतिकारियों की निर्मम हत्या हुई, राजनीति और साहित्य में क्रांतिकारी शक्तियों का विघटन और विखंडन हुआ, शोषक वर्ग की सत्ता क्रमशः मजबूत होती गई, सांस्कृतिक मोर्चे पर नई सत्ता से प्राप्त सुविधाओं के लोग और वर्गीय सहानुभूति के कारण नया वर्ग संतुलन स्थापित होने लगा, देश की जनता विक्षोभ की मनोदशा में जी रही थी क्या इस सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश में किसी सांस्कृतिक नवजागरण की संभावना है?'³.

जाहिर है इन उथल-पुथल भरे माहौल में साहित्य में भी वैचारिक द्वंद का बनना अवश्यंभावी था।

इसी उथल-पुथल और इसी समय के साथ जूझने की प्रक्रिया और छटपटाहट के बीच 'जन' आता है। जन यानी वह जनता जो हाशिए पर खड़ी है। यह जन वही मेहनतकश जनता है जिनके लिए नागार्जुन शहरी संभ्रांत लोगों से पूछते हैं 'घिन तो नहीं आती है'...। वह अंतिम आदमी जिससे समाज है, साहित्य है, जीवन है, संघर्ष है, गीत है और कविता है।

वह अंतिम आदमी : जो कंधों पर उठा लेता है समूचा ब्रह्मांड
 पैरों से रौंद डालता है अंतरिक्ष
 मथकर फेंक देता है समुंदर की गहराई
 और वक्त के चट्टानी पहियों के आगे
 अड़ा देता है अपनी बजबजाती हुई पसलियाँ।

(एक चेहरा : पच्चीस दरारें, डॉ. मनोहर अभय)

जन आंदोलन, सामाजिक या नव सामाजिक आंदोलन होने के केंद्र में शोषण निहित होता है, शोषण और शोषक वर्ग के खिलाफ जनता गोलबंद होकर इन शोषकों का असली चेहरा सामने लाती है और 'यह दुनिया बदल देनी चाहिए' की माँग करती है, किसी भी जन आंदोलन के पीछे उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ ज़िम्मेदार होती हैं। शोषणकारी परिस्थितियों और उनसे उपजे विद्रोह की बात करते हैं तो उन्नीसवीं सदी का जिक्र महत्वपूर्ण है। 'भारतीय समाजवादी आंदोलन' नामक लेख में प्रधान हरिशंकर प्रसाद लिखते हैं-

"उन्नीसवीं सदी के मध्य तक अंग्रेजों की राजकीय सत्ता भारत के अधिकांश भागों में कायम हो चुकी थी। भारत के उन्नत कुटीर उद्योग को नष्ट कर दिया गया, यहाँ के गाँवों की प्राचीन आर्थिक आत्मनिर्भरता को समाप्त कर दिया गया फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में सामंतवाद पर कोई विशेष आघात नहीं पहुँचा। अंग्रेजी राज्यकाल के प्रारंभ में मुख्यतः छोटे किसान ही थे पर बाद में बँटाईदार और खेतिहर मजदूर वर्ग भी महत्वपूर्ण हो गए। ये सभी वर्ग कड़ी मेहनत करने के बावजूद दाने-दाने को मोहताज हो गए, ये गाँव के धनी वर्ग के चंगुल में रहकर एक प्रकार की दासता की जिंदगी बिताते रहे। इन्हें सूद लेना पड़ता था जिन्हें ये चुका नहीं पाते थे और इनकी जमीने गिरवी रख ली जाती थी।"⁴.

किसानों के जीवन और जमीन में जो उतार-चढ़ाव आए और 1793 में इस्तमरारी बंदोबस्त लागू होना, ज़मींदारी का अंत और ब्रिटिश कंपनियों का एकक्षत्र साम्राज्य स्थापित होना, 1780 के आस-पास संथालों का आगमन, फिर 1855-56 में संथाल विद्रोह और आगे अन्य किसान विद्रोह आदि तथा इसके साथ-साथ आजादी के बाद महत्वपूर्ण रूप से उभरे जन आंदोलन तेलंगाना, नक्सलबाड़ी, संपूर्ण क्रांति आंदोलन और नव सामाजिक आंदोलन जिसे अस्मिता विमर्श मूलक आंदोलन भी कहा जाता है उल्लेखनीय है। तेलंगाना आंदोलन यद्यपि 1946 से ही अस्तित्व में आता है लेकिन इस आंदोलन का उफ़ान 1948-51 में ज़्यादा दिखाई देता है। शुरूआत में किसानों का आंदोलन काश्तकारी अधिकारों को कायम रखने के लिए और सामंतवादी शोषण के विरुद्ध था। यही प्रतिरोध बाद में निजाम के शासन को उखाड़ फेंकने के आंदोलन के रूप में विकसित

हुआ। एक शब्द में कहें तो तेलंगाना की ये लड़ाई जमींदारों के शोषण के विरुद्ध अपनी ज़मीन बचाए रखने के लिए किसानों द्वारा छेड़ा गया आन्दोलन था। तेलंगाना आंदोलन में किसानों को जेल में डाल दिया गया, उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। 1948 में नागार्जुन इसी संघर्ष को 'वह कौन था' में व्यक्त करते हैं-

'बूचड़ों की कैद में हैं भाइयों साथी हमारे
तोड़कर हम जेल का फाटक
उन्हें आज़ाद करने जा रहे हैं
आजकल परसों कि चौथे रोज निश्चय
पुलिस-क्वार्टर में अगर भगदड़ मचे तो
शांत रहना भाइयों, मत हड़बड़ाना
तोड़कर हम जेल का फाटक
उन्हें आज़ाद करने जा रहे हैं।' ⁵

जहाँ तक 70 के दशक की बात है, नक्सलबाड़ी आंदोलन में मध्यवर्गीय महिलाओं से लेकर खेत मजदूरों व आदिवासी महिलाओं ने बड़ी संख्या में भाग लेने और लड़ाइयों में शहीद हो जाने का इतिहास है।

गैरबराबरी वाले समाज से और सड़ चुकी सांस्कृतिक मान्यताओं से, लड़ती-गिरती और गिर-गिरकर लड़ने को आतुर आधी दुनिया का, जिसमें आदिवासी सबसे आगे हैं और संपूर्ण क्रांति आंदोलन के बाद भारत में जनांदोलन और उसकी भूमिका को तय करने में आदिवासी संघर्षों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में निवास कर रहे आदिवासियों ने अपने-अपने भू-भाग में अपने हकों, अधिकारों और अस्तित्व की लड़ाई के लिए विभिन्न विद्रोह किए। अंग्रेजों, साहूकारों, महाजनों, जमींदारों और सूदखोरों के अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आंदोलन किए, जिनमें संधाल हूल विद्रोह, उलगुलान, बस्तर की लड़ाई। आज अधिकतर आदिवासी साहित्य के प्रेरणा स्रोत विरसा मुंडा, सिद्धों कानू, तिलका माँझी, कालिबाई, झलकारी बाई जैसे तमाम क्रांतिकारी हैं।

आदिवासी समाज पर लिखने वाले लेखकों, मानवशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों व इतिहासकारों ने आदिवासी विद्रोहों की कड़ी में विद्रोही महिलाएँ मसलन सिनगी दई, कइली दई, देवमनी जैसी स्त्री विद्रोही चरित्रों की चर्चा तक नहीं की है, उन्होंने सिद्धो, कानू या विरसा मुंडा की तरह उन्हें स्थापित करना तो दूर उनकी सहभागिता का उल्लेख भी नहीं किया है। 'विरसा विद्रोह' के कदम पर कदम संघर्ष में स्त्रियों की व्यापक भागीदारी पाई गई जिसमें आदिवासी समाज की अस्मिता की रक्षा के लिए अंग्रेजों से लोहा लिया। विद्रोहों की इस कड़ी में 1855-56 का संधाल हूल आदिवासी संघर्ष का ऐसा उदाहरण है जिसमें आत्मगौरव और आत्मसम्मान के लिए 10 हजार से ज्यादा लोगों ने बलिदान दिया।

"ये वे आंदोलन हैं जिन्हें लोग किसी न किसी रूप में जानते हैं और हमारी सरकारें भी किसी न किसी रूप में इन आंदोलनों की स्मृति में अपनी उत्सवधर्मिता दिखलाती रही हैं, लेकिन दुखद यह है कि ये आंदोलन पुरुष आंदोलनकारियों के संदर्भ में ही याद किए जाते हैं। भील आदिवासी आंदोलनों में भी स्त्रियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, फूलों, झानो, माकी, थीगी, नागी, लैबू, साली, चंपी, देवमनी, सिनगी, कइली दई जैसी आदिवासी स्त्रियों की एक लंबी फेहरिस्त है जिनके नाम गुमनामी में ही सही लोकगीतों, कलाओं और प्रतीकों में जिंदा हैं।" ⁶

80 का दशक नक्सलबाड़ी के दमन के धक्के के बाद बड़े-बड़े जनसंघर्षों में बड़ी भागीदारी का काल रहा है। तेलुगू के कवि वरवरराव कहते हैं- जीवन की कोई भी गतिविधि जीवन को आगे बढ़ाने और बेहतर बनाने के लिए होती है। वरवर राव का मानना है कि लड़ाई में जब तक स्त्रियों की भूमिका को महत्व नहीं दिया जाएगा, क्रांति की बात करना बेमानी ही सिद्ध होगा-

“जब तक तुम्हारे हृदय में
क्रांति के रक्ताभ सूर्य का उदय नहीं होता
सत्य का दर्शन करना असंभव है।”⁷.

इतने संघर्ष के बाद आज महिलाओं की स्थिति, उपस्थिति, उनके विचार, उनके आंदोलन इस पितृसत्तात्मक समाज में कहाँ तक टिक पाए हैं ये सिर्फ 16 दिसंबर 2012 को दिल्ली में हुए निर्भया बलात्कार कांड से या रोज़ हो रहे मानसिक, शारीरिक आघातों, व्याघातों से महिलाओं की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। जया जादवानी ‘तत्वमसि’ (उपन्यास) में लिखती हैं-

“वह पलटती है रोटी तावे पर और
बदल जाती है पूरी की पूरी दुनिया”

वहीं आज की ही लेखिका तबस्सुम ‘बेटियाँ’ कविता में लिखती हैं-

“पर अल्लाह जाने क्यूँ
बेटियों को माफ नहीं किया जाता
उन्हें अपने किए की सजा
मिल के ही रहती है...”⁸.

स्वातंत्र्योत्तर काल में आंदोलनों को सामान्यतः दो चरणों में विभाजित किया जाता है, पूर्व और उत्तर आपातकाल। इसी कड़ी में आगे नव सामाजिक आंदोलन पर बात की जाए तो घन श्याम सहाय द्वारा किया गया विभाजन महत्वपूर्ण है। घनश्याम सहाय ने अपनी पुस्तक ‘भारत में सामाजिक आंदोलन’ में इन नव सामाजिक आंदोलनों पर बात की है-

- कृषक या किसान आंदोलन
- दलित आंदोलन
- स्त्री आंदोलन
- आद्योगिक कामगार (श्रमिक) वर्ग के आंदोलन
- छात्र आंदोलन
- मध्यम वर्ग के आंदोलन
- मानवाधिकार आंदोलन
- आदिवासी आंदोलन
- पर्यावरणीय आंदोलन

इन आंदोलनों के साथ छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा, नर्मदा बचाओ, चिपको आंदोलन भी सामाजिक परिवर्तन में अहम भूमिका निभाई है।

मानवाधिकार आंदोलन पर घनश्याम सहाय लिखते हैं - “राज्य द्वारा साम्यवादियों का दमन के खिलाफ विरोध प्रदर्शन हेतु सन् 1948 में पश्चिमी बंगाल में नागरिक स्वतंत्रता समिति का गठन हुआ। नक्सलवादियों पर राज्य के नृशंस प्रहार के साथ 1960 के दशक के आखिर में मुख्य नागरिक स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इस आंदोलन में न्याय और समानता के

लिए समाज के उत्पीड़ित हिस्सों के 'लोकतांत्रिक अधिकारों' के मुद्दे को उठाया गया। यहाँ तक कि राष्ट्रीय और राज्य आयोगों ने कई मामलों में, जो हिरासत में मृत्यु, मुठभेड़ में मृत्यु, बलात्कार प्रकरण, बाल श्रम, शरणार्थियों के साथ बुरा बर्ताव आदि से संबंधित है हस्तक्षेप किया है।" 9.

वर्तमान में यह आंदोलन जल, जंगल, जमीन की लड़ाई को लेकर खड़ा है, देश भर के आदिवासी क्षेत्रों को माओवादी कहा जाने लगा है और उन्हीं को नक्सलवादी भी कहा जाता है।

मनुष्य और उसकी मनुष्यता की मुक्ति में आस्था रखने वाले को पता है कि शोषण से मुक्ति का इतिहास उतना ही पुराना है जितना शोषण का। इस शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि जनांदोलनकारी कविताएँ सिर्फ नारेबाजी, शुष्क और नीरसता के घेरे में नहीं बाँधी जा सकतीं। नागार्जुन, गोरख पांडेय, आलोक धन्वा, कुमार विकल, वेणु गोपाल जैसे जनांदोलनकारी कवि जीवन के अन्य सरस पहलुओं पर भी लिख रहे थे लेकिन प्रगतिवादी दृष्टि के साथ। नागार्जुन एक तरफ 'वह कौन था', 'भोजपुर' जैसी कविताएँ लिखते हैं वहीं दूसरी तरफ 'गुलाबी चूड़ियाँ' भी लिखते हैं। आलोक धन्वा एक तरफ 'गोली दागो पोस्टर' लिखते हैं 'वहीं भागी हुई लड़कियाँ', 'सफ़ेद रात' जैसी कविता भी लिखते हैं।

20वीं सदी के उत्तरार्ध और 21वीं सदी के जनांदोलनों का रूप पहले के आंदोलनों से कुछ मायनों में बदल चुका है। पाँचवे दशक में भूदान, ग्रामदान, अछूतोद्धार, ज़मींदारी, जागीरदारी विरोधी अभियान, जाति-प्रथा तोड़क अभियान जैसे आंदोलन हुआ करते थे और कविताएँ भी कुछ इसी तरह लिखी जाती थीं। बाद में तेलंगाना, नक्सलबाड़ी, संपूर्ण क्रांति जैसे बड़े आंदोलन हुए जहाँ सशस्त्र संघर्ष को अनदेखा नहीं किया जा सका और ओज से पूर्ण कविताएँ सामने आईं।

गोरख लिखते हैं-

‘शोषण और दमन की
विश्वव्यापी मशीन के खिलाफ़
अविराम युद्ध ही है
मेरे देश का
सही परिचय’¹⁰.

किसान आंदोलन की ऐतिहासिक एवं वैचारिक पड़ताल की आज सख्त ज़रूरत है। आज के समाज में हो रहे सामाजिक, नव सामाजिक आंदोलनों पर लेखकों को एक बार फिर से उसी तेवर के साथ लिखने और जनता के सामने लाने की ज़रूरत है। आज ज़रूरत है एक बार फिर से जन में शामिल होकर जनता का आदमी बनने की क्योंकि दुनिया रोज बनती है और समय का पहिया चलता रहता है और आंदोलनों से निकले लहू से क्रांति गीत बनता है।

ज़रूरत है फिर से नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल, गोरख पांडेय, पाश, वरवरराव, चेरबंडा राजु, कुमार विकल, वेणु गोपाल, आलोक धन्वा की, तभी कोई लिख सकता है- 'गोली दागो पोस्टर' या 'फिर कारागृह में कैद दोस्तों मत हड़बड़ाना, मत फड़फड़ाना हम तुम्हें छुड़ाने आ रहे हैं...' ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह: नामवर 'हिंदी साहित्य के पच्चीस वर्ष, आलोचना, जनवरी-मार्च, 1974, पृ. सं.- 68
2. वही, पृ. सं.- 66
3. पांडेय मैनेजर, 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के इतिहास में लेखन की समस्याएँ' शीर्षक लेख, आलोचना, जनवरी-मार्च, 1979, पृ. सं. - 42, 43
4. तलवार वीर भारत, (संपादक)- नक्सलबाड़ी के दौर में, प्रधान हरिशंकर प्रसाद: भारतीय समाजवादी आंदोलन, शीर्षक लेख, प्रकाशन- अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण-2007, पृ.सं.- 183-84

5. नागार्जुन चयनित कविताएँ, संपादक: मैनेजर पांडेय, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पहला संस्करण-:2010, पृ.सं.-13
6. राय रामजी (प्रधान संपादक) जनमत, वर्ष-25,अंक, 2 मई 2006,पृ.सं.-44
7. राव वरवर, साहस गाथा, संपादन एवं अनुवाद- शशि नारायण स्वाधीन, नुसरत मोहियोद्दीन,प्रकाशन-वाणी, संस्करण-प्रथम:2005, पृ.सं.-107
8. निहां हुस्न तबस्सुम, चाँद-ब चाँद, बोधि प्रकाशन, प्रथम संस्करण: सितंबर, 2013, पृ.सं.-94
9. सहाय घनश्याम,भारत में सामाजिक आंदोलन,अनुवादक- हरिकृष्ण रावत, प्रकाशन-रावत, पृ.सं.- 233, 238
10. पांडेय गोरख, जागते रहो सोने वालों, प्रकाशन-राधाकृष्ण, प्रथम संस्करण:1983 - पृ.सं.- 105